Chapter-8

अध्याय ८

उपसंहार

जैसा कि पूर्ववर्ती विवेचन से स्पष्ट है कि ऐतिहासिक उपन्यास केवल जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति से सम्बन्ध नहीं रखता, अपितु उसके लेखन में ऐतिहासिक अध्ययन पूर्ण व्याख्या और विश्लेषण का बहुत बड़ा योग रहता है। साहित्य की युगीन पीठिका के निदर्शन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भारतीय जन-जीवन में बौद्धिकता के सन्निवेश का काल है। इस बौद्धिकता ने ही हिन्दी गद्य साहित्य और उसकी विविध विधाओं को जन्म दिया। कतिपय विद्वानों ने इसे अंग्रेजी शासन, तथा इनके सम्पर्क और अंग्रेजी साहित्य का परिणाम माना है। एक सीमा तक इस प्रभाव को स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु गद्य के विकास में देश की मनीषा की स्वत:स्फूर्त चेतना का महत्त्व कुछ कम नहीं। किसी भी भाषा के साहित्य में मौलिकता का समावेश इसके बिना नहीं हो सकता। देश के विविध भागों में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज आर्य समाज, तथा रामकृष्णमिशन, आदि संस्थाओं के द्वारा जो सांस्कृतिक और सामाजिक आंदोलन उठे, वे भी आधुनिक युग के निर्माण में महत्त्व रखते हैं। अत: नयी शिक्षा-व्यवस्था के साथ-साथ उक्त अभियानों से निर्मित मौलिक चेतना हिन्दी गद्य के शिल्पविकास के लिये उत्तरदायी है।

अंग्रेजों ने राजनीतिक विजय के साथ-साथ देश के जन-मानस पर अपनी मानसिक विजय का प्रयास कुछ कम नहीं किया। मैकाले की शिक्षा ईसाई धर्म का प्रचार और भारतीय इतिहास और समाज-व्यवस्था की अपनी दृष्टि से व्याख्या उपर्युक्त तथ्य का साक्ष्य उपस्थित करती है। इसमें संदेह नहीं कि इसका परिणाम देश के सुशिक्षित वर्ग पर पड़ा, किन्तु

दूसरी ओर इसकी प्रतिक्रिया में बुद्धिवादी दृष्टिकोण से देश की संस्कृति, समाज-व्यवस्था, प्राचीन शास्त्रों और पुराणों आदि की व्याख्या भी राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, किशोरचन्द्र सेन, तथा आगे चलकर बाल गंगाधर तिलक प्रभृति मनीषियों ने प्रस्तुत की। अंग्रेजों की उपर्युक्त नीति के कारण देश की जनता अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक परंपरा के प्रति हीन-भावना तथा तत्कालीन सामाजिक विकृतियों को लक्ष्य करके आत्मगौरव-शून्यता का समावेश हो चला था। अनेक भारतीय मनीषियों ने भी समकालीन विकृतियों के उच्छेद के बौद्धिक प्रयास किये, किन्तु देश की सांस्कृतिक परंपरा के प्रति गौरव-भावना भी उन्होंने जागृत की।

उपन्यास और कहानी जैसी विधाएं निश्चय ही अंग्रेजी साहित्य के सीधे सम्पर्क और साथ ही बंगला साहित्य के माध्यम से उसके अप्रत्यक्ष सम्पर्क के परिणाम हैं। शिल्प की दृष्टि से इनका सम्बन्ध पुरानी कहानी और वृहत् कथाओं से नहीं जोड़ा जा सकता। अंग्रेजी साहित्य के इस प्रदेय को स्वीकार करके उसका वस्तुगत आधार प्रायः भारतीय विचार-धारा और उपरिनिर्दिष्ट वैचारिक क्रांति ही बनी। भारतेन्दु युगीन और आरम्भ के परवर्ती उपन्यास इसी विशेषता को समेटे हुए हैं।

यह हम लक्ष्य कर चुके हैं कि हिन्दी और गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा के आरम्भ में लगभग चौबीस वर्षों का अन्तर है। गुजराती का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास, श्री नंदशंकर तुलजाशंकर मेहता का " करण घेलो " सन् १८६६ ईस्वी में प्रकाशित हुआ, जबकि हिन्दी में श्री किशोरीलाल गोस्वामी का " हृदयहारिणी वा आदर्श रमणी " सन् १८९० ईस्वी में प्रकाशित हुआ। इससे प्रकट है कि ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी में इस प्रकार के उपन्यासों की परम्परा बाद में आरम्भ हुई। किन्तु

कथावस्तु और उद्देश्य की दृष्टि से दोनों भाषाओं के ऐतिहासिक उपन्यासों में पर्याप्त साम्य दृष्टि गोचर होता है। जिस सांस्कृतिक पुनर्जागरण, तथा सामाजिक सुधारवादी चेतना का संकेत ऊपर और प्रसंगानुसार पूर्ववर्ती अध्यायों में भी किया जा चुका है, वह दोनों ही भाषाओं के उपन्यास साहित्य में विद्यमान है। आरम्भ के इन ऐतिहासिक उपन्यासों में नैतिकता और जीवन के आदर्श पक्ष की व्याख्या समान रूप से मिलती है। यदि सूक्ष्म अंतर को देखा जाय, तो हिन्दी और गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यास वातावरण-प्रधान हैं। इस तथ्य के अपवाद स्वरूप गुजराती में ' करण घेलो ', जहाँ एकाध त्रुटियाँ अवश्य मिलती हैं, में इतिहास और कल्पना का समुचित समन्वय है।

भारत में इतिहास का लेखन अंग्रेजों से आया। उन्होंने हमारे ऐतिहासिक तथ्यों को अपने ढंग से और निजी उद्देश्य से प्रेरित होकर तोड़ा और मरोड़ा। इससे देश की युगीन मनीषा को जो आघात पहुँचा, उसकी प्रतिक्रिया दोनों भाषाओं के साहित्य में हुई। हिन्दी और गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यास भी इस युगीन चेतना से प्रेरित कहे जा सकते हैं।

हिन्दी के आरम्भिक काल के ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने भारत के व्यापक फलक को अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में ग्रहणकर देश-वासियों के समक्ष भारतीय आदर्श और अतीत-गौरव की प्रतिष्ठापना, आर्यधर्म और आर्यावर्त की रक्षा हिन्दुओं में जाति और देश के प्रति प्रेम और बलिदान की भावना को जागृत करने के लिए आदर्श, वीर और महान पुरुषों के चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किये। हिन्दी, देश के व्यापक क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसके उपन्यासों में दिल्ली, अवध, बिहार, पंजाब, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र आदि क्षेत्रों के ऐतिहासिक घटना-प्रसंग

सहज ही आवृत हो गये हैं। गुजराती के आरम्भिक उपन्यासकारों ने अधिकांशत: अपने प्रदेश विशेष को ग्रहण कर नैतिकता का उपदेश, सामाजिक रूढ़ियों और कुरीतियों का उन्मूलन, अंधविश्वासों की कटु आलोचना, आधुनिक (वैज्ञानिक) युग के अनुरूप सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में आवश्यक परिवर्तन कर अभ्युत्थान की ओर प्रयाण करने के उद्देश्य से प्रेरित हो अपनी कृतियों का सर्जन किया।

स्वरूप की दृष्टि से हिन्दी के आरम्भिक काल के उपन्यासों को हम दो रूपों में प्राप्त करते हैं। प्रथम कोटि के उपन्यासों में (श्री किशोरीलाल गोस्वामी से बाबू जयरामदास गुप्त तक) कल्पना का प्रयोग अधिक है, तो दूसरे प्रकार के उपन्यासों में इतिहास का आग्रह। अत: प्रथम वर्ग के ऐतिहासिक उपन्यास केवल ऐतिहासिक रोमान्स बन कर रह गये हैं, तो दूसरे वर्ग के केवल इतिवृत्तात्मक उपन्यास। गुजराती के आरम्भिक ऐतिहासिक उपन्यास भी कल्पना-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास मात्र हैं। इनमें इतिहास की पृष्ठभूमिका मात्र ग्रहण कर कल्पना के स्वच्छंद प्रयोग द्वारा कथा-वस्तु की प्रस्तुति की गयी है।

हिन्दी और गुजराती के उपर्युक्त आरम्भिक ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र, स्वरूप, और लक्ष्य का अवलोकन करने पर यह दृष्टिगत होता है कि हिन्दी उपन्यासों में गृहीत क्षेत्र-फलक और लक्ष्य तत्युगीन सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण की दृष्टि से व्यापकता लिये हुए हैं, जबकि गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यास अधिकांशत: प्रदेश विशेष तक ही सीमित हैं और समाज-सुधार ही उनका लक्ष्य रहा है। स्वरूप की दृष्टि से दोनों मनोरंजन-तत्त्व से युक्त कल्पना-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

हिन्दी और गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों का विकास-काल श्री वृन्दावन लाल वर्मा के " गढ़ कुंडार " (१९२९) और श्री कन्हैयालाल

माणेकलाल मुंशी के " पाटणनी प्रभुता " (१९१६) से माना गया है। ऐतिहासिक उपन्यास के स्वरूप की दृष्टि से विकास-काल के इन उपन्यासों में पात्र, घटना और वातावरण के निरूपण में सिद्धान्तत: ऐतिहासिक तथ्य और सर्जनात्मक कल्पना का कलात्मक विनियोजन इस युग के उपन्यासकारों ने किया है। किन्तु यह विनियोजन कृतियों में एक रूप में नहीं हुआ। परिणामत: ऐतिहासिक उपन्यास के, विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास, समन्वयान्वित ऐतिहासिक उपन्यास, वातावरण-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास और कल्पना-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास जैसे विविध रूप अस्तित्व में आये। राजनीतिक और सामाजिक नवजागरण के अनुरूप ही भारतीय अतीत के गौरव और ऐतिहासिक महापुरुषों का चरित्र-चित्रण, समाजवादी दृष्टिकोण से तथ्यों की व्याख्या एवं अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन, तथा वैयक्तिक दृष्टि-बिन्दु से विषय-वस्तु की व्याख्या आदि के लक्ष्य इस काल के उपन्यासकारों के सामने दृष्टिगत होते हैं। गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों में निजी प्रदेश के गौरव और उसके महापुरुषों के चरित्र-चित्रण को अधिकांशत: लक्ष्य में रखा गया है, यद्यपि आर्यावर्त एवं प्राचीन भारत के अन्य ऐतिहासिक व्यक्तित्व तथा घटना-प्रसंग भी वहाँ दृष्टिगत होते हैं।

आधुनिक युग में उपन्यास को मुन्शी प्रेमचन्द ने अपने सामाजिक यथार्थ और युग-चेतना से समन्वित किया और उनके बाद उपन्यास के क्षेत्र में मनोविश्लेषणवादी और समाजवादी उपन्यास लिखे जाने लगे। इन समसामयिक प्रवृत्तियों का प्रभाव हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों पर भी पड़ा। गुजराती में ये प्रखर रूप में दिखाई नहीं देतीं। सामाजिक उपन्यासों में प्रेमचन्द की भाँति ऐतिहासिक उपन्यासों में श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यास को सर्वप्रथम अपने युगबोध और ऐतिहासिक यथार्थ के साथ सम्पृक्त किया। उनके उपन्यासों में सम्बद्ध युग का जीवन अपनी पूर्ण सत्यता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। ऐतिहासिक उपन्यास का यह स्वरूप वर्माजी के

समकालीन अनन्य ऐतिहासिक उपन्यासकार, सर्वश्री, चतुरसेन शास्त्री, रांगेय राघव, यशपाल, एवं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रभृति के सर्जन में भी उत्तरोत्तर प्रगतिशील रहा ।

ऐतिहासिक यथार्थ के निरूपण में वर्माजी की एक विशेषता यह भी है कि वे व्यक्ति और समाज तक ही सीमित नहीं रहते, बल्कि उनसे सम्बद्ध प्रकृति विशेष का भी उन्होंने चित्रण किया है, जो उनके उपन्यासों का आकर्षक अंग बन गया है । इसे लक्ष्य करके ही उन्हें हिन्दी का वाल्टर स्कॉट कहा जाता है । किन्तु उनकी कृतियों का अनुशीलन करने पर यह कहा जा सकता है कि वर्माजी ने वाल्टर स्कॉट की सी प्रदेश-वर्णन की दीर्घता और सामन्ती आस्था को अपनी कृतियों में हावी नहीं होने दिया, बल्कि उन्हें अपनी औचित्य-पूर्ण सीमा में रखकर वाल्टर स्कॉट की कला से अपने शिल्प की विशिष्टता का परिचय दिया है । इस प्रकार इनके उपन्यासों में व्यक्ति, समाज, और प्रकृति तीनों की पूर्ण यथार्थता के साथ अभिव्यक्ति हुई है ।

गुजराती में श्री क० मा० मुंशी ने ऐतिहासिक उपन्यास को ऊपरी रोमांस से उठाकर अपनी पाटण-त्रयी द्वारा उसे यथार्थ ऐतिहासिक परिवेश में रखने की दिशा में प्रयत्न किया, किन्तु एलेग्जेन्डर ड्यूमा और विक्टर ह्यूगो के प्रभाव [१] के कारण वेग से प्रवाहित होने वाली कथावस्तु, भव्य पात्र-सृष्टि, और प्रतिस्पर्धात्मक संवाद के जाल में ही वे फंसे रहे । प्रादेशिक और सामाजिक यथार्थ के निरूपण के लिए वहां कोई अवकाश दृष्टिगत नहीं होता । फिर भी गुजराती के आरंभिक ऐतिहासिक उपन्यास-कारों की तुलना में, अपने उपन्यासों में गौरवास्पद अतीत की प्रतिष्ठापना कर ऐतिहासिक उपन्यास को जो उन्होंने नया मोड़ दिया, वह सर्वश्री चुनीलाल वर्धमान शाह, धूमकेतु, गुणवंतराय आचार्य, झवेरचंद मेघाणी,

---

१ डा० सुरेश जोशी, क्षितिज (फरवरी १९६३) 'नवल कथा विशे' लेख के आधार पर, पृ० ६०९

चुनीलाल मडिया और वर्धक प्रभृति उपन्यासकारों में उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त करता रहा है।

सर्जन की दृष्टि से श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के लेखन में दोहरी प्रक्रिया अंगीकार की है। पहली, कृति सम्बन्धी इतिहास-संशोधन की और दूसरी, उसे युग-बोध के साथ जीवन्त अभिव्यक्ति देने की। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों के परिचय में कृति के ऐतिहासिक तथ्यों सम्बन्धी संशोधन का विवरण उनकी पहली प्रक्रिया का परिचायक है। दूसरे, फिर वे ऐतिहासिक परिवेश में युग-बोध के अनुरूप कथावस्तु पात्र आदि का बड़ी सरलता के साथ विकास करते चलते हैं। वर्माजी की सी इतिहास-संशोधन की यह प्रवृत्ति हिन्दी एवं गुजराती के अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों में नहीं मिलती।

हिन्दी और गुजराती के विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों के रूप में श्री वृन्दावन लाल वर्मा एवं श्री चुनीलाल वर्धमान शाह के प्रतिनिधि उपन्यासों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि श्री शाह वर्माजी की भाँति इतिहास-संशोधन की प्रक्रिया में गहरे नहीं उतरते, गृहीत तथ्यों की ऐतिहासिकता का उल्लेख मात्र कर देते हैं। किंतु उनका इतिहास और औपन्यासिक कला का विनियोजन काफी संतुलित है। उसमें बिखराव नहीं है। इसीलिए शिल्प की दृष्टि से इस वर्ग के इनके उपन्यास श्रेष्ठतर हैं। श्री वर्माजी का "झाँसी की रानी - लक्ष्मी बाई" उपन्यास भी इसी कोटि का है।

हिन्दी और गुजराती के समन्वयान्वित ऐतिहासिक उपन्यासों में समकालीन उपन्यास-साहित्य की समाजवाद और मनोविश्लेषण वाद जैसी प्रवृत्तियों का भी प्रभाव न्यूनाधिक रूप में दिखाई देता है। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में "सिंह सेनापति" एवं "खीवर" अपने समाजवादी सिद्धान्तों को लक्ष्य करके लिखे गये हैं। गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों में

यह प्रवृत्ति दृष्टिगत नहीं होती । श्री गुणवंतराय आचार्य के ' देश दीवान ' में अपने जनतंत्रात्मक दृष्टिकोण की प्रस्तुति अवश्य है ।

हिन्दी के उपन्यास साहित्य में मनोविश्लेषणवाद एक प्रबल प्रवृत्ति के रूप में उपन्यासों में व्यापक बना । किन्तु हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में उसका वह मनोवैज्ञानिक रूप ही उतरा है, जो प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य में विद्यमान है, जैनेन्द्र और इलाचन्द्र का मनोविश्लेषणात्मक रूप नहीं । उनमें मनोविज्ञान का प्रयुक्त रूप मन के चेतन और उपचेतन तक ही रक्खा दिखाया गया है, वह उसके तीसरे रूप अवचेतन तक नहीं आता । किन्तु गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों में से श्री मुंशी के ' पृथिवी वल्लभ ' एवं श्री चुनीलाल वर्धमान शाह के ' नीलकंठ नुं बाण ' में अवचेतन के मनोविश्लेषण का भी सम्यक् निरूपण दृष्टिगत होता है ।

इनके अतिरिक्त हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में ' बाणभट्ट की आत्मकथा ' एवं चारु चन्द्र लेख ' में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा निरूपित सांस्कृतिक वातावरण का लालित्यपूर्ण निरूपण उनकी एक विशेषता है । गुजराती में श्री दर्शक का ' दीप निर्वाण ' सांस्कृतिक वातावरण को अवश्य लिये हुए है, किन्तु उसके शिल्प-विधान की दृष्टि से उसे उपर्युक्त कृतियों के समकक्ष नहीं कहा जा सकता ।

उद्देश्य की दृष्टि से ' झांसी की रानी - लक्ष्मीबाई ', ' बेकसी का मजार ', ' आचार्य चाणक्य ' और ' दिग्विजय ' राजनीतिक, राष्ट्रीय, एवं सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से राष्ट्र-व्यापी धरातल के उपन्यास हैं । ' भारेलो अग्नि ' और ' भगवान कौटिल्य ' इस संदर्भ में याद किये जा सकते हैं , किन्तु उनमें राष्ट्रीय एकता का वह स्पंदन नहीं, जो उपर्युक्त कृतियों में दृष्टिगोचर होता है । गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यास अधिकांशत: गुजरात के गौरव की अभिव्यंजना तक ही सीमित रहे हैं । किन्तु उनका प्रदेशवर्ती

गौरव भी राष्ट्र-अविरोधी होने के कारण किसी प्रकार कम गौरवास्पद नहीं ।

हिन्दी और गुजराती के कल्पना-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यासों में ' दिव्या ' और ' मुर्दों का टीला ' वास्तव में श्री यशपाल और डा० रांगेय राघव की ऐतिहासिक कल्पना की अनुपम देन है । गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों में इस कोटि की कृतियों का प्राय: अभाव है ।

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में आधुनिक युगबोध के साथ जीवन की यथार्थ चेतना इतनी सम्पृक्त रही है कि उनके अतीत के परिवेश में वर्तमान जीवन के प्रश्न और मानव-मूल्य मुखरित होते दिखाई देते हैं, जबकि गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों में अधिकांशत: ऐतिहासिक रस ही उनका मुख्य लक्ष्य रहा है ।

हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा अभी गतिशील है । पिछले दशक में प्रकाशित उपन्यासों की संख्या ही लगभग बीस से अधिक होगी।[१] गुजराती-साहित्य में यह परंपरा आज अवरुद्ध प्राय: दिखाई पड़ती है ।

हिन्दी और गुजराती साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास की अपनी-अपनी समृद्ध परंपरा है । इनमें से दोनों भाषाओं में श्रेष्ठ गिने जाने योग्य ऐतिहासिक उपन्यास समन्वयान्वित ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि में आते हैं । दोनों भाषाओं के विभिन्न वर्गों के ऐतिहासिक उपन्यासों के वर्गगत साम्य-वैषम्य की चर्चा उनसे सम्बद्ध अध्यायों में प्रस्तुत की जा चुकी है । यहाँ दोनों परंपराओं के सामग्रिक पर्यवेक्षण के लिए उनके विभेदक तत्त्वों का कथन ही अभीष्ट माना गया है, जो पूर्ववर्ती पृष्ठों में प्रस्तुत है ।

---

१ डा० रामनारायण सिंह मधुर, हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास, परिशिष्ट, ३८८

अध्ययनगत संभावनाएं :

आज तक प्रस्तुत अध्ययनों में हिन्दी और गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों की कई दिशाएं अनावृत्त हैं।[1] उनमें युगीन संस्कृति का निरूपण, उनका समाजशास्त्रीय अध्ययन, साठोत्तरी ऐतिहासिक उपन्यास, जैसे विषयों के भी अध्ययन प्रस्तुत किये जा सकते हैं। हिन्दी और गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासकारों को लेकर भी अनुशीलन की पर्याप्त संभावनाएं विद्यमान हैं, उदाहरणार्थ श्री वृन्दावनलाल वर्मा और कन्हैयालाल मुंशी के ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन एक रोचक शोध का विषय है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और दर्शक के ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन उनकी विशिष्टताओं का ऐतिहासिक उपन्यास के विषय में उनकी उपलब्धियों एवं उनके योगदान का परिचायक हो सकता है। हिन्दी के गुरुदत्त, एवं गुजराती के श्री धूमकेतु तथा गुणवंतराय प्रभृति के ऐतिहासिक उपन्यासों का अध्ययन अपने आप में महत्त्वपूर्ण शोध के विषय बन सकते हैं। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास का लेखन-कार्य आज जब प्रगतिशील है, आज के सुधी ऐतिहासिक उपन्यासकारों से श्रेष्ठ कृतियों की रचनाओं द्वारा साहित्य के भंडार की अभिवृद्धि की भी पूर्णतया संभावना है।

---

१. अपने अध्ययन को प्रस्तुत करने से दो-एक दिन पूर्व ही लेखक को यह सूचना प्राप्त हुई कि कुमारी सरोजिनी शर्मा ने भी एतद्विषयक अध्ययन प्रस्तुत किया है। लेखक की अपनी सीमाएँ हैं, अतः प्रस्तुत अध्ययन में उसका आकलन नहीं हो सका है।